आचार्य विष्णु दत्त पाण्डेय
का लघु उपन्यास
अविश्वासी मित्र
आचार्य विष्णु दत्त पाण्डेय "मधुप"

आचार्य विष्णु दत्त पाण्डेय
का लघु उपन्यास
अविश्वासी मित्र
आचार्य विष्णु दत्त पाण्डेय "मधुप"

लेखक/प्रकाशक :

आचार्य विष्णुदत्त पाण्डेय

शारदा नगर, बी.आई.डी. लोहरदगा

झारखण्ड - 835302

मो. 9835976162

रूपसज्जा : एन. के. धीमान

मुद्रक : **हवाई प्रिंटर्स**

रादौर (यमुनानगर) हरियाणा ।

प्रथम संस्करण : 1000 प्रतियाँ

श्री मकर संक्रांति 14 जनवरी सन् 2025, सम्वत् 2081

मूल्य : ₹ 50

आचार्य विष्णुदत्त पाण्डेय ''मधुप'' के द्वारा रचित ग्रंथ

1. गणिका सन्त सम्वाद
2. अनुभूतियों की प्रगीताञ्जलि भाग-1
3. अनुभूतियों की प्रगीताञ्जलि भाग-2
4. अनुभूतियों की प्रगीताञ्जलि भाग-3
5. अविश्वासी मित्र (उपन्यास)
6. हिन्दी साहित्य गद्याञ्जलि।

ग्रंथ प्राप्ति का स्थान

आचार्य विष्णुदत्त पांडेय ''मधुप''

शारदा नगर, लोहरदगा (झारखंड)

मो. : 9835976162

लेखक परिचय

प्रस्तुत पुस्तक के लेखक आचार्य श्री विष्णु दत्त पाण्डेय जी मेरे पिता जी हैं। आप प्रारम्भ से ही सरल एवं सरस स्वभाव के धनी हैं। आपका जन्म झारखण्ड प्रदेश के अन्तर्गत गुमला जिला के कुलकुपी ग्राम दिनांक 05 जनवरी 1970 को हुआ था। आपके पिता अर्थात मेरे पितामह डॉ विन्ध्येश्वर पाण्डेय (पं. विश्ववसेनाचार्य जी) संस्कृत जगत के एक प्रतिष्ठित विद्वान थे। मेरे पूज्य पितामह डॉ. विन्ध्येश्वर पाण्डेय जी की अनेकानेक लोकोपकारक रचनाएँ प्रकाशित हैं। लेखक की माताजी पूजनीया श्रीमती यज्ञसेनी देवी जी का सान्निध्य और आशीर्वाद वर्तमान में लेखक को प्राप्त है।

प्रारम्भिक शिक्षा– मेरे पिताजी की प्रारम्भिक शिक्षा उत्तरप्रदेश के हमीरपुर जिलान्तर्गत झलोखर ग्राम में हुई, वहीं रहते हुए उन्होंने बुन्देलखण्ड यूनिवर्सिटी झाँसी से अपनी स्नातक की शिक्षा प्राप्त की। इसके बाद वाराणसी जाकर वहाँ से हिन्दी एवं संस्कृत विषय में एम.ए. एवं बी.एड. की शिक्षा प्राप्त की। आपने बी. एच. यू. सम्पूर्णानन्द विश्वविद्यालय एवं काशी विद्यापीठ तीनों ही विश्वविद्यालयों से क्रमशः अपनी उच्च शिक्षा प्राप्त की। तदनन्तर 1996 से लेखक अपने गृहराज्य झारखण्ड के लोहरदगा जिलान्तर्गत शीला अग्रवाल सरस्वती विद्या मंदिर में हिन्दी एवं संस्कृत विषय के आचार्य के पद पर कार्यरत हैं।

संस्कृत शास्त्रों के संस्कार से ओतप्रोत अपने पिता के संसर्ग में बाल्यकाल से ही रहने के कारण मेरे पिताजी साहित्य की ओर अग्रसरित हुए। जिसके फलस्वरूप हिन्दी भाषा को माध्यम बनाकर उन्होंने संस्कृत के प्रभाव को प्रस्तुत करते हुए अपनी लेखनी चलाई। हिन्दी साहित्य के प्रति आपका झुकाव जन्मजात था। अतः बाल्यकाल से ही आपने हिन्दी साहित्य में रचना करना प्रारम्भ कर दिया था।

प्रतिभावान लेखक की प्रमुख रचनाएँ निम्नांकित हैं –

गणिका सन्त सम्वाद, अनुभूतियों की प्रगीताञ्जलि (तीन भागों में), अविश्वासी मित्र (उपन्यास), गद्याञ्जलि।

हिन्दी साहित्य में संस्कृतनिष्ठ रचनाओं को प्रस्तुत करना लेखक का मूल उद्देश्य रहा है। उन्होंने इसके लिए अपनी रचनाओं में यथासम्भव प्रयास किया है।

सुधीपाठकवर्ग प्रस्तुत रचनाओं का रसास्वादन करते हुए अपने अमूल्य सुझाव प्रस्तुत कर सकते हैं, आपके सुझावों का सदा स्वागत है।

अभिनव आनंद पाण्डेय

सिद्धान्तज्योतिषाचार्य (लब्धस्वर्णपदक)

पात्र परिचय

1. शत्रुंजय.. वाहलीक देश का राजा
2. देव...शत्रुंजय का पुत्र
3. ज्योत्स्ना...शत्रुंजय की पत्नी
4. सुबुद्धि..शत्रुंजय का मन्त्री
5. मालती.. देव की पत्नी
6. शत्रुमन्यु.. कुंतल देश का राजा (शत्रुंजय का द्वेषी)
7. रामरति..एक श्रेष्ठ महात्मा
8. छद्मज्ञ, रोहित, चन्द्रदेव...............................देव के मित्र (शत्रुमन्यु के विशेष व्यक्ति)
9. अबाधगति..शत्रुंजय के रथ का नाम
10. सुवदना.. मालती की सखी

भूमिका

प्रस्तुत 'अविश्वासी मित्र' उपन्यास शैली में लिखा गया एक शिक्षाप्रद लेख है। वास्तव में यह लेख पूर्ण काल्पनिक है। इसमें बीच-2 में कहीं-2 संस्कृत एवं हिन्दी छन्दों की कविताएं भी है। गद्य एवं पद्य जिसमें हों उसे चम्पू कहा जाता है। उस दृष्टि से यह एक चम्पू भी है। पर इसमें कविताओं की संख्या बहुत न्यून है। पूर्णता की दृष्टि से यह मेरी दसवीं कक्षा में अध्ययन करते समय की प्रथम गद्य रचना है। इसका उद्देश्य केवल शुद्ध संस्कृत निष्ठ शैली में एक शिक्षाप्रद गद्य समाज के सम्मुख प्रस्तुत करना है। प्रथम रचना होने के कारण एवं योग्यता के आधार पर लेख में त्रुटियों का होना स्वाभाविक है। फिर भी आशा है कि प्रबुद्ध जन इसे पढ़कर, समझकर, अपने मन में मनन करेंगे और इससे कुछ लाभ उठायेंगे।

लेखक

आचार्य विष्णु दत्त पाण्डेय ''मधुप''

(अध्याय एक)

कुछ मनुष्य जग में होते हैं अति ही मधुर प्रियवादी।
हृदय कुटिलता पूर्ण तथा वे धोखा देने के आदी।।
सरल प्रकृति के नर उनको निज सखा मान लेते हैं।
तथा अन्त में उनके चंगुल में फँस दुख हीं पाते है।।

सन्ध्या की सुहावनी वेला थी। भगवान भास्कर की नवल किसलय सदृश कमनीय मयूखें अम्बर के पूर्व से पश्चिम की उदधि में प्रविष्ट हो गई थीं। दिनकर-कर- निकर से परिवेष्टित रत्नाकर की वारितरंगों का समूह, हेम शलाका पुंज सदृश परिलक्षित हो रहा था। कुछ समय से एक कन्दर्प दर्प-कदन कमनीय कुमार कतिपय मित्रों के साथ नियति-नटी के श्रृंगारावलोकन में व्यस्त था। यह नवयुवक कतिपय क्रोशों से उदधि तट पर- उदधि अन्तर में अर्कास्त लीलावलोकन हेतु आया था। अतः श्रान्त था। अम्बुधि अन्तर में अर्कास्त लीला प्राकृतिक सुन्दरता की दृष्टि से मनोहारी होती है उसके आने के पूर्व ही अर्कास्त-लीला समाप्त हो गई थी। फिर भी अम्बुनिधि के उत्ताल तरंगों को देखकर अपने अम्बक युगल की पिपासा शान्त करने हेतु वह सरित्पति के तट पर पहुंच ही गया था। बहुत दूर से पद-बल से आने के कारण वह क्षुधाराति से संग्राम करने में अविजयानुभूति कर रहा था। उसके जन मन मोहन मूर्ति को देखकर सागरोत्तालतरंग दर्शक जनगण मोहित हो गये और विचार करने लगे- अहो! यह शिरीष सुकुमार कुमार कंपति कूल पर कहाँ से आया है। उस नवयुवक को समस्त जन देखने लगे पर उन दर्शकों में दो दर्शक संशयपूर्ण दृष्टि से देख रहे थे। वे आपस में बातें करने लगे। उनमें से एक ने कहा, क्या यह राजकुमार है? तब दूसरे ने कहा कि हमें भी संशय हो रहा है चलो पूछा जाय, यह निश्चय कर वे दोनों उस मानस मोहन के पास गये। तब जो बढ़ा था उसने सकुचाते हुए कहा, श्री मन् मैं आपसे एक धृष्टता करना चाहता हूँ, आपके हृदय क्षेत्र पर क्रोधांकुर सम्भव तो नहीं होगा उस नवल किशोर के साथियों में से जो संख्या में तीन थे, एक ने कहा- शीघ्र बोलो, क्या कहना चाहते हो। तब उसने कहा कि में श्री मान का परिचय जानना चाहता हूँ। फिर वही बोला कि ये वाह्लीक देश के

खल मान विमर्दन, अरिमद मर्दन, प्रजा कुमुद वन मृगलांछन राजा शत्रुंजय के पुत्र राजकुमार 'देव' हैं। रात्रि हो चुकी थी। क्षपाकर-कर निकर से समस्त संसार व्याप्त हो गया था। मानों विश्व के चराचर प्राणियों को निशाकर ने शुक्ल वस्त्र से आच्छादित कर दिया हो। नीरनिधि कूल पर अब केवल चार व्यक्ति शेष थे। और सब अपने-अपने घरों को चले गये थे। राजकुमार के साथियों में से एक ने कहा कि अब कहीं अन्यत्र चलकर इस रात को बिताने का प्रबन्ध किया जाये। ऐसा आपस में विचार करके वे किसी अदृष्ट पूर्व दिशा को चले गये। उनके लिए मानों रात दिन दोनों बराबर हों वे चले जा रहे थे।

जभीं तक मानव धन से युक्त, बना रहता है तब तक हीं ।
ऊपरी मन से मित्र अनेक, बनें जग में उसके अति हीं ।।
बरद कर अपना कमला जब, हटा लेतीं हैं उससे तो ।
रिक्त घट के संकाश सभी छोड़ देते हैं उसको तो ।।

(अध्याय दो)

वाह्लीक देश के शासक बड़े श्रेष्ठ प्रजापालक थे। बहुत ही निष्पक्ष न्याय करने के कारण राजा से सारी प्रजा पूर्ण सन्तुष्ट थी। दूसरे देश का राजा वाह्लीक में चढ़ाई नहीं कर सकता था क्योंकि उसे वाह्लीक पति श्री शत्रुंजय के सैन्य बल का पता था। राजप्रासाद बहुत ही सुन्दर बना था। वह इतना धवल था कि उसके समक्ष चन्द्रमा का प्रकाश भी धूमिल पड़ जाता था। इस अमरागाराकार भवन के चारों ओर एक प्राचीर था। जिसका रंग गुलाब के समान था। उस राज भवन के कुछ दूर पूर्व में एक आराम था जो अपनी सुन्दरता से नन्दन वन को लज्जित किये हुए था। उस उपवन में रंग विरंगे पुष्प खिले रहते थे। उस उपवन में रात्रि में भी आठ मालाकार रहते थे। उस उपवन से लगा हुआ ही भगवान त्र्यम्बक का मन्दिर था। प्रत्येक चन्द्रवार को राजा स्वयं भगवान त्रिलोचन की सपर्या हेतु जाते थे। उसी दिन उस उद्यान के फूल-फल एवं बिल्वपत्र तोड़े जाते अन्यथा और किसी दिन भी कोई पुष्प नहीं टूटता था। जो कोई भी उस वाटिका का पुष्प बिना राजाज्ञा से तोड़ता था उसे राज दण्ड से दण्डित किया जाता था। राजा को प्रकृति से बहुत प्रेम था। अतः वह

प्रत्येक रविवार को अपनी पुष्प वाटिका में भ्रमणार्थ जाता था और एक घंटे घूमकर पुनः अपने महल में लौट आता था। यद्यपि शत्रुंजय एक राजा था तथापि वह अधिक राजसी सुख से प्रेम न करके प्रकृति से प्रेम करता था। और सब प्रजा के व्यक्तियों के समान ही रहना चाहता था। वह प्रत्येक रात्रि में वेश बदल कर अपने राज में घूमता था और देखता था कि कहाँ किसको क्या कष्ट है और सुबह होने पर उनको बुलवाकर उनके कष्टों का निवारण करता था। उस राजा का एक सुबुद्धि नामक प्रधान अमात्य था। जो राजनीति में बहुत ही कुशल था। एवं राजा को सही मार्ग समय-समय पर बतलाया करता था। राजा अपने अमात्य से पूर्ण सन्तुष्ट था और कोई भी कार्य करना हो तो उससे परामर्श लेकर ही करता था। रानी का नाम ज्योत्स्ना था जो राजा को प्रसन्न रखने वाली थी। इस दुनिया में राजा को तीन वस्तुएँ ही अधिक प्रिय थी। पहले तो प्रजा प्राणों से अधिक प्यारी थी, फिर अपना पुत्र देव प्रिय था फिर तृतीय श्रेणी में अपनी पुष्पवाटिका प्रिय थी।

(अध्याय तीन)

राजकुमार देव अपने तीनों मित्र छद्मज्ञ, रोहित एवं चन्द्रदेव के साथ चलता-2 एक गहन-वन में पहुंचा। उस वन में अनेक प्रकार के शाखी मन्द मारुतवेग से धीरे-2 झूम से रहे थे। वे उस गहन वन में निर्भय हो प्रविष्ट हो गये। पर सन्ध्या हो गई अतः वे आगे न चल एक स्थान पर रात्रि व्यतीत करने हेतु रुक गये। फिर प्रातःकाल आगे बढ़ने लगे वे उस प्रगाढ़ कान्तार में आगे बढ़ते जा रहे थे। फिर प्रातःकाल बढ़ते-बढ़ते उन्हें एक आश्रम मिला। वहाँ पर त्रिविध समीर बह रही थी, मृगशावक गण उछल कूद में लगे हुए थे, उन्होंने वहाँ पर एक आश्चर्य देखा कि हस्ति समूह मध्य में एक पंचानन सरोवर की ओर सलिल पानार्थ मन्दचाल से चला जा रहा था। एवं एक श्येन बिखरे हुए नीवारकणों को चुनते हुए पक्षिगणों के मध्य में अन्नकणों के स्वाद से अपने मन के सन्तुष्टि हेतु आकर नीवारकणों को चुनने में व्यस्त था। वे वहाँ पर उस आश्रम का अभिज्ञानप्राप्त करने हेतु रुक गये। छद्मज्ञ ने कहा कि यह आश्रम तो बहुत विचित्र एवं रमणीय है उस आश्रम के समीप एक नदी कल कल करके प्रवाहित हो रही थी। उसके लोल कल्लोल मुक्ताहार संकाश परिलक्षित हो रहे थे। उस आश्रम में प्रवेश करते ही उन्हें लगा मानों हम लोग

देव लोक में पहुंच गये हों। उन्हें अपूर्व शान्ति का अनुभव हुआ। और उन्हें एक आश्चर्य ने उद्वेलित कर दिया -

कुरंग एक दौड़ता हुआ समीप आ गया।

लौट फिर गया सुशीघ्र अति अमन्द चाल से।

अतिथि चार आ गये अपूर्व मुनि कुटीर में।

इसे बताने हेतु ऋषि को मानों लौट मृग गया।।

जिस आश्रम के मृगों को इतना ज्ञान हो वहाँ के संचालक कितने प्रबुद्ध होंगे। ऐसा अपने मन में सोचकर वे सब कुतूहलवश आगे बढ़ते गये। वहॉ का वन क्षेत्र अच्छे वृक्षों से पूर्ण था।

अरण्य तरु व्याप्त था, अरु लदे फलों से सभीं।

मधूक सहकार के, अधिक थे धरारुह वहाँ।।

अमंद अति चाल से, निज सखा गणों के सहित्।

कुमार वन से त्वरित, ऋषि कुटीर को फिर गये।।

कुछ ही दूर बढ़ने पर उन्हें एक उद्यान मिला जिसमें दाडिम, कदली, जम्बू आदि के सुव्यवस्थित तरुगण झूमते से लगते थे। उनवृक्षों पर पर्याप्त फल लदे थे। उन्हें कुछ दूर पर फिर एक सुन्दर पुष्पोद्यान मिला, जिसमें कुछ मुनिकुमार सिंचाई कर रहे थे। सन्ध्या होने को थी। सभी मुनि कुमार उद्यान सिंचन पूर्णकर शौच हेतु नातिदूर वर्तिनी निम्नगा की ओर बढ़ रहे थे। उसी समय ये चारों उस अति पावन भू पर पहुंचे। तब एक मुनि कुमार ने शौचार्थ सरिता गमन स्थगित कर इन नये अतिथियों से पूछा-

कहाँ से आये हैं सब आप, भटकते फिरते क्यों वन में।

कामना किससे मिलने कीं, बनाये हैं अपने मन में ।।

ऋषि कुमार के ऐसा पूछने पर छद्मज्ञ ने कहा कि हम इसी समीप के वीरपुर नामक ग्राम से इस वन में भ्रमणार्थ आये थे और इस आश्रम से प्रभावित होकर यहाँ पर चले आये। अब हम इस आश्रम के संचालक जी से मिलना चाहते हैं। तब उस मुनिकुमार ने कहा कि यहाँ से पच्चीस कदम जाने पर एक भव्य कुटी दिखाई पड़ेगी और उस कुटी में एक सितकेशी तपस्वी मुनि

मिलेंगे। आप उन्हीं के पास जाकर शान्तिपूर्व बैठ जाइयेगा क्योंकि वे अभी ध्यानमग्न होंगे। जब वे ध्यान से उठेंगे तो आप लोगों से बोलेंगे। वही हम लोगों के गुरु और इस आश्रम के संचालक हैं। उन ऋषि कुमार के बताये अनुसार ये चारों उन महात्मा के पास गये। और उन्हें ध्यानरत पाया, वे ऐसे थे जैसे–

तपस्या तप करता मानों, महा कानन के निर्जन में।

वदन था तेजपूर्ण अति हीं, भले हीं था न तेज तन में।।

(अध्याय चार)

जब से राज कुमार देव राजमहल से गायब हुए थे तभी से राजा शोक युक्त हो गये थे। जब दोनो गुप्तचरों ने राजा से आकर कहा कि मैंने उन्हें सागर तट पर देखा है तब राजा को कुछ सन्तोष हुआ मानों डूबते को तिनके का सहारा मिल गया हो। राजा ने पूछा कि क्या राजकुमार अकेले ही थे तब गुप्तचर ने कहा कि नहीं, वे अन्य तीन व्यक्तियों के साथ थे। मैंने उनका परिचय पूछा तब उनके साथियों में से एक ने पूरा परिचय बताया। उनके साथ जो साथी थे वे तीनों ही हृष्टपुष्ट थे तथा मेरे परिचय पूछने पर कड़ाई से उत्तर दिया था। अतः हम डर गये और आपका सन्देश नहीं कह सके। वृश्चिक गरल जैसे शीघ्र ही समस्त शरीर में फैल जाता है वैसे ही यह समाचार समग्र राज्य में अति शीघ्र फैल गया। राजा धैर्य छोड़कर शोक समुद्र में अवगाहन करने लगे। उस समय उनकी सभी इन्द्रियॉ दुःख में निमन थी। केवल मन्त्री ही कभी-कभी उन्हें सान्त्वना देता था।

समग्र इन्द्रियाँ अमन्द दुःख में निमन थीं।

शरीर सुस्त था तथा गिरा न हर्ष युक्त थीं।।

अमात्य मुख्य राज्य का विशेष बुद्धि युक्त था।

वहीं सदा सुशान्तिदा गिरा नृपाल से कहे।।

इधर नववधू राजकुमार देव की पत्नी मालती की दशा अवर्णनीय हो गई। उसने जैसे ही यह सुना कि हमारे स्वामी का पता लग गया है किन्तु वे आये नहीं तो उसके दुःख का प्रवाह अधिक वेगयुक्त हो गया। क्योंकि खोये हुए सगे सम्बन्धी का अधिक दिन बाद पता चलने पर सुप्त

वियोगाग्नि पुनः प्रज्वलित हो उठती है। अतः मालती का मन-मृगांक शोक-विधुंतुद के द्वारा ग्रस्त हो गया। वह जब भी एकान्त में होती तो अपने प्रियतम के बल पौरुष का ध्यान कर निज-नयन-नीरज-नीर पूर्ण कर लेती। एक दिन मालती अपने विश्राम कक्ष में अपराह्णकाल में विश्राम कर रही थी उसी अवसर पर अचानक उसे अपने प्रियतम की स्मृति हो आई और वह उनके बल पौरुष का ध्यान कर कहने लगी।

सुमन सा सुकुमार शरीर था, अरि लिए पर वज्र कठोर था।
अब वही हमसे अति दूर है, समय भी लगता अति क्रूर है।।

प्रेम का आदर्श पारावत स्वर्ण पिंजर में सुशोभित हो रहा था। जिसे राजकुमार देव ने निज विहंगम पालनोत्कट रुचिवशात् एक सन्त से प्राप्त कर स्वयं पाला था। जिसे देखकर मालती को लगा जैसे यह खग भी बहुत दुःखी है अतः वह कहते लगी-

विहग का उनको अति शौक था, यह कपोत सुखी अब है नहीं।
निजकर द्वय से अति प्यार से, परसते प्रिय थे इसको सदा।।
इसलिए यह अश्रु बहा रहा, निज विषाद यथा लुढ़का रहा।
प्रिय गये जबसे इस गेह से, न चुनता कण अन्न सुप्रेम से।।

जो विरहाग्नि तप्त होता है उसके लिए सोना खाना सब दुःखनीरसिक्त सा प्रतीत होता है। उसे शीतल वस्तुएँ भी जलाने वाली होती हैं। मालती रात्रि में सोई थी पर उसे नींद न आई और वह अपनी सखी को पास बुला बैठाकर बोली-

सुलभ है हमको अब अश्रु ही, जल रही विरहानल में यहाँ।
तपन सा लगता शशि कान्ति भी, उपल उष्ण हमें यह सेज है।।

मालती सखी 'सुवदना' के हृदय में ये वाक्य शूल की भाँति चुभ गये। जैसे कोई कण्टक पीड़ित व्यक्ति पीड़ा शान्ति हेतु शीघ्र कण्टक निकल जाय यह सोचता है वैसे ही सुवदना भी निज हृदय चुभन, शमन हेतु मालती को आश्वासन देने लगी। क्योंकि उसके पास आश्वासन के अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं था। क्योंकि वह सच्ची सखी थी। सच्चे मित्रों को अपने मित्र का दुःख अपना दुःख प्रतीत होता है और निज विषाद निवारण का उपाय कौन नहीं करता। सखी के

आश्वासन जल से मालती की शोकाग्नि कुछ शान्त हो गई। इस भॉति मालती की जीवन-शोक-सरिता- द्रुतगति से प्रवाहित होने लगी।

(अध्याय पाँच)

यह विश्व ईश्वर शक्ति से है सत्य भासित हो रहा।
पर है नितान्त असत्य मुनिमन भी विमोहित हो रहा।।
कल्याण है नर का इसी में प्रेम हरिपद में करे।
फिर भव जलधि से धेनु पद सम शीघ्र हीं वह निस्तरे।।

किन्तु हमें तो राज्य भार सम्हालना है, में कैसे ईश्वर भक्ति कर सकता हूँ। मन तो एक ही है मुनिवर फिर दो विषयों में कैसे रम सकता है। हे दयासिन्धु! आप ही मेरे संशय का निवारण कर सकते हैं। इस पर मुनिश्रेष्ठ रामरति बोले कि जो मैं कह रहा हूँ उसे सुनो। तब राज कुमार देव परितस्थ मुनिकुमारों ने देव को संकेत से समझाते हुए कहा कि जो गुरु जी बोल रहे हैं उसे सुनिये। वे आपके एक-एक प्रश्न का उत्तर दे देंगे, केवल धैर्य की आवश्यकता है। इस पर राजकुमार शान्त हो ऋषिवचन श्रवण रत हो गये। मुनि बोले कि- जिस भाँति एक नट अनेकों प्रकार की क्रीड़ा करता है पर वह सत्य लगते हुए भी वास्तव में असत्य होता है उसी भाँति जीवों पर कर्म का परदा पड़ जाने के कारण यह विश्व सत्य भासित होता है। किन्तु यदि कोई गुणवान व्यक्ति, जैसे कोई विशेषज्ञ नट की वास्तविकता को नजरबन्द-खण्डन-मन्त्र के द्वारा जान लेता है वैसे ही उस नटवर की वास्तविकता को जान ले तो उसे संसार से कभी भी स्नेह नहीं होगा। विश्वेश ने हमें अपना यह सुन्दर सुमन वन देखने के लिए कुछ समय निश्चित किया है और यह शर्त रखी है कि समय के अनुसार काल समापनोपरान्त तुमको निकाल दिया जायेगा। और यदि, इस उद्यान को देखते हुए बिना किसी में विशेष स्नेह किये हमारा ध्यान नहीं भूलोगे तो तुम्हें उचित पारितोषिक मिलेगा। किन्तु जीव हैं कि वे अपना लक्ष्य भूलकर इस उपवन में ही खो जाते हैं। मोहित हो जाते हैं। कहीं सुन्दर-2 फूल खिले हैं, कहीं शान्त सन्त हृदय सदृश सरोवर का स्वच्छ जल है, कहीं अच्छे-2 फल लगे हैं। इन सब वस्तुओं में ही खो जाते हैं, विश्वेश प्रदत्त काल

को भूल जाते हैं, पुनः नरक में जाते हैं, पुनः जगत में आते हैं, जगपति आज्ञा भूल जाते हैं, दुःख पाते हैं, कितना समय तुम्हें भगवान के द्वारा दिया गया। है उसे ध्यान में रक्खो। किसी से विशेष स्नेह मत करो। एक तो वैसे ही समय खो रहे हो और यदि सांसारिकों से स्नेह करोगे तो कुछ उसमें समय व्यर्थ जायेगा। चिन्तनीय बस ईश्वर ही हैं। कहाँ से मैं आया हूँ और कहाँ पर मुझको जाना है। इसे नहीं बिसराना है। लक्ष्य नहीं अब खोना है। संसार सागर से पार जाकर ईश्वर सन्निधि में पहुँचना ही प्रत्येक जीव का चरम लक्ष्य है। इस बात को जीवों के द्वारा भुला दिये जाने के कारण ही यह संसार चल रहा है। अतः निज लक्ष्य को न भूलो यही इस देह का फल है। यही सारतत्व है। इसे न भूलो। सन्ध्या हरित किनारी युक्त रक्तिम शाटिका धारण करके कुछ गुनगुनाते हुए चली आ रही थी। शौचादि का समय हो जाने के कारण मुनीश्वर रामरति ने सभा का समापन हरि स्मरण करते हुए किया। राज कुमार देव को महर्षि ने एकान्त में मिलने के लिए कहा। फिर सभी मुनिकुमार भगवन्नाम स्मरण करते हुए अपना- अपना कमण्डल धारण करके नदी के किनारे जाने को तत्पर हुए। विहग कलरव के कारण समग्र आश्रम ध्वनित हो गया मानों आश्रम स्थल ऐसे महान ऋषि को अपने यहाँ आश्रय ग्रहण किये हुए देखकर अपने भाग्य की सराहना कर रहा हो। उचित समय पर समस्त मुनि कुमार समीपस्थ तटिनी में शौच क्रियादि करके आश्रम में लौट कर राम गुणगान करते हुए निद्रा देवी की गोद में लीन हो गये। शशि-कौमुदी भागीरथी में आश्रम ने डुबकी लगायी। पूरा आश्रम सो रहा था मानों भूमा की विभिन्न किरणें ही शरीर धारण कर-करके सो गई हो। राजकुमार देव का मन चिन्ता युक्त हो रहा था। महर्षि ने एकान्त में मिलने के लिए क्यों कहा? कौन सी ऐसी बात थी जो सबके सम्मुख बताने योग्य नहीं थी? किन्तु हमे तो ऋषि वचन माननीय है। ऐसा मन में निश्चित कर वे अकेले मुनि समीप गये। सखात्रय उनके सोते थे। मुनि के चरणों में सविनय प्रणिपात पुरस्सर राजकुमार देव बोले कि मुनिवर मैं आपकी आज्ञानुसार आपके पास आया हूँ। क्या आज्ञा है इस दास के लिए। इस पर सुनिवर ने कहा कि हे राजकुमार मैं तुम्हारी, सेवा, सरलता और निश्छलता से बहुत प्रसन्न हूँ। अतः मैं तुम्हें एक अत्यन्त गुप्त बात बता रहा हूँ, वह तुम्हें पहले तो अप्रिय लगेगी किन्तु यदि तुम मेरी बात को हृदय से मान लोगे तो तुम्हारा कल्याण ही है। राजकुमार ने

कहा- मुनिवर मैं आपकी बात को सहर्ष स्वीकार करूँगा, आप बतायें। इस पर मुनिवर ने कहा कि सुनो- ये तीनों मित्र तुम्हारे सच्चे मित्र नहीं हैं इसे मैंने दिव्य दृष्टि से देख लिया है। ये आगे चलकर तुम्हें ठग सकते हैं। तुम जितना स्नेह इनसे करते हो उतना ये तुमसे नहीं करते हैं। ऐसा सुनकर कुमार के मन को एक झटका सा लगा पर वे उसे दबा गये और मुनि के वचनों का प्रत्युत्तर नहीं दिये। ऋषि ने कहा देखो किसी से सहसा स्नेह नहीं करना चाहिए। किसी से सोच समझ कर प्रेम करना चाहिए। एक स्थान पर कहा भी है-

किसी मानव से तुम बहुत सहसा स्नेह न करो,

बिना जाने ही तुम निज ह्रदय देना मत कभी।

सभी होते हैं क्या सरल तुम जैसे जगत में,

किसी का है कैसा हृदय बतलाना कठिन है।।

ऐसा सुनकर कुमार की आँखों से आँसुओं की धार बहने लगी। ब्रम्ह वेला हो गई। सभी मुनि कुमार जग गये।

(अध्याय छः)

अवहेलना बड़ों की, मत तुम करो कभी, पद गर्त में पड़ेंगे, चेष्टा करो जभी।

जो बात गुरु कहें तुम, भगवान वाक्य जानों,

ऋषि मुनि तथा बड़ों को, भगवान तुल्य जानों।।

राज कुमार देव आठ दिन बाद अपने साथियों के साथ आश्रम से निकलकर निज धाम गमनार्थ पथ पर अमन्द आये। वैकुण्ठ से जैसे कोई हरि भक्त विलग होकर संसार-सागर में आ पड़े तो उसे जिस अशांति का अनुभव होगा वैसा ही अनुभव इन लोगों को उस पवित्र आश्रम से अलग हो जाने पर हुआ। उसी समय छद्मज्ञ ने चन्द्रदेव से धीरे से कहा कि अवसर का सदुपयोग करने में नहीं चूकना चाहिए। क्योंकि कहा भी है-

जो नर अवसर का सही, करे नहीं उपयोग।

उसे सताता है सदा, असफलता का रोग।।

रोहित ने भी इस बात का समर्थन किया। रविप्रतिबिम्ब नदी के जल में पड़ता था तो बहुत ही मनोहर लगता था। सन्ध्या सुन्दरी अपने पैरों की पायल-ध्वनि को खग-कलरव के ब्याज से प्रकट कर रही थी। और धीरे- धीरे आकाश मार्ग से उतरती चली आ रही थी। सुरभित वायु मन्द गति से चल रही थी। वन के विटप-गण वायु के झोंके से हिलाये जाने से ऐसे प्रतीत हो रहे थे मानों सन्ध्या सुन्दरी के आगमन में वे मंगल-गीत गा रहे हों। राजकुमार देव ने कहा कि चन्द्रदेव! देखो प्राकृतिक छटा कितनी रमणीय है अतः कुछ रुककर यहाँ की रमणीयता देख ली जाये। ऐसा कहकर देव, रुक गये सभी विहग अपने-2 नीडों में आ रहे थे। अपने चंचुओं में शकुनि शावकों के लिए उनकी मातायें कुछ अन्नकण लिए आ रही थीं। स्नेहवश 'देव' उन अपने तीनों मित्रों को अपने हाथों से स्पर्श कर लेता था और प्रकृति की तान में तान मिलाने लगता था। इसी बीच छद्मज्ञ ने देव को ऐसा करने से रोका किन्तु वह नहीं समझ सका कि हमारा स्पर्श वास्तव में इसे बुरा लग रहा है। और वास्तव में बुरा लग भी नहीं रहा था। किन्तु पूर्व योजना या अन्य किसी कारण वश छद्मज्ञ ने देव को मारना प्रारम्भ कर दिया। मनुष्य को मित्र का पूरा विश्वास करना चाहिए। अतः राज कुमार ने एक दो प्रहार में तो कुछ नहीं कहा और समय के फेर से उन दोनों ने भी इसका कोई विरोध नहीं किया अधिक घर्षण से चन्दन से भी अग्नि उत्पन्न हो जाती है। अन्त में जब प्रहार की पराकाष्ठा होने लगी तो देव को भी थोड़ा क्रोध हुआ। और उसने भी हाथ से ही एक दो प्रहार कर दिया। पर अन्त में छद्मज्ञ भाग गया। और वे दोनों भी उसी के साथ कहीं अन्यत्र चले गये। केवल राजकुमार देव उस गहन कान्तार में बचे। अच्छी बातें मनुष्य को तब याद आती हैं जब उसके साथ कोई अप्रिय घटना घट जाती है। अब राजकुमार मलिनानन से वन की रमणीयता को देखते हुए मन्द गति से गुनगुनाते हुए जा रहे थे-

किसी मानव से तुम बहुत सहसा स्नेह न करो,
बिना जाने ही तुम निज हृदय देना मत कभी।
सभी होते हैं क्या सरल तुम जैसे जगत में,
किसी का है कैसा हृदय बतलाना कठिन है।।

वन से निकलकर राजकुमार एक शहर में गये और वहाँ पर उन्होंने वेश परिवर्तन किया। शहर के लोग बाद में जान गये कि ये शायद राजकुमार देव हैं। फिर देव ने एक रथ और घोड़े खरीदे क्योंकि पहले वाले घोड़े और रथ उसके मित्र जबरदस्ती छीन ले गये थे। फिर उस नवल स्यन्दन पर आरुढ़ होकर देव अपने देश (वाहलीक) को चलने के लिए उद्यत हुए। जिस देश में देव ने वेश परिवर्तन किया और घोड़े इत्यादि लिए वह 'कुंतल' नामक देश था। वहाँ के राजा शत्रुमन्यु थे जो वाहलीक देश के राजा शत्रुंजय से मन में द्वेष करते थे। पर सम्मुख से कुछ नहीं कर पाते थे। राजा शत्रुंजय के पास एक बहुत ही सुन्दर रथ था जिसका नाम 'अबाधगति' था। उसी रथ पर सवार होकर राजकुमार पहले घूमने के हेतु आये थे। जिसे उनके मित्र रूप शत्रुओं ने उनसे छीन लिया था। और चले गये थे। ये बातें देव को बाद में ज्ञात हुईं कि शत्रुमन्यु उनके पिता से आन्तरिक द्रोह करता है। नये रथ पर सवार होकर राजकुमार जल्दी-जल्दी अपने देश की तरफ चले जा रहे थे। और उनके मन में अनेकों विचार उठ रहे थे। इस समय सारथी का काम भी स्वयं देव ही कर रहे थे क्योंकि पहले वाले सारथी को उन (छद्मज्ञ) लोगों ने पकड़ लिया था। विपुल वेग से रथ के चक्के शान्त सदृश लगते थे। राजकुमार का मन अपने पिता से मिलने को व्याकुल हो रहा था। अपनी प्रेयसी सुश्री मालती की उन्हें बार-बार याद सता रही थी। माता के चरणों में मस्तक रखने हेतु उनका हृदय व्याकुल हो रहा था। यह नवीन रथ भी अच्छा था और अबाधगति के सदृश ही अबाध गति से चला जा रहा था। इस प्रकार चलते-2 राजकुमार अपने राज्य के प्रमुख द्वार पर पहुँच गये। इसी द्वार से वाहलीक देश में प्रवेश किया जाता था। उस प्रमुख द्वार से राजकुमार ने प्रवेश किया और अपने मन में अपूर्व आनन्द का अनुभव किया।

(अध्याय सात)

शुभ शकुन भी कभी-कभी सटीक सिद्ध होते हैं। राजा शत्रुंजय सायंकाल में अपने प्रमोद गृह में दुःखित मन को भुलाने के लिए बैठे थे। उसी समय उनका दक्षिणांग फड़का और राजा ने शुभ शकुन जानकर अपने मन में कुछ शान्ति का अनुभव किया। कुछ देर बाद राज कुमार का रथ महल के द्वार में पहुँचा। राजा तो राजकुमार को देखकर आनन्द से इतने प्रफुल्लित हो गये कि

जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। माता अपने पुत्र को पाकर बहुत प्रसन्न हो गई। नववधू मालती को तो अवर्णनीय आनन्द मिला। वह आनन्द के मारे अपनी आँखों से अश्रु टपकाने लगी। शीघ्र ही राजकुमार के आगमन का समाचार पूरे राज्य में फैल गया। सभी लोग अपने-2 घरों में मंगल गीत गाने लगे। आनन्द की सीमा न रही। जैसे किसी सर्प की मणि खोकर पुनः प्राप्त हो जाये उसी भांति ज्योत्स्ना को आनन्द हुआ। सभी लोग कहने लगे कि राज कुमार कहाँ चले गये थे। राजकुमार सभी का एक छोटा सा उत्तर देते थे कि सब कुसंगति का फल है। राज कुमार के राज्याभिषेक का प्रबन्ध होने लगा। राज्याभिषेक की सामग्रियों का प्रबन्ध करने हेतु सभी मन्त्रियों को कहा गया। सभी लोग अपने-अपने कार्य में लग गये। शीघ्र ही राज कुमार का राज्याभिषेक हो गया। और सभी ने सममोचित गान किया। इस प्रकार राज कुमार देव अब एक राजा के रूप में स्थित हुए। नर्तकियों ने मंगल गान और मंगल नृत्य किया। स्वच्छ मणिमय नृत्य वेदिका होने के कारण उन नर्तकियों के चरणों का प्रतिबिम्ब उस वेदिका में लक्षित हो रहा था। राज कुमार देव के राजपद पर स्थापित होने पर अनेकों मंगल कार्य किये गये। पुष्पवाटिकायें नई लगाई गई। और अनेकों छोटे-2 तालाब खुदवाये गये। जिनमें मणिमय सीढ़ियाँ बनवाई गई, इस प्रकार देव एक राजा का कार्य करने लगे। प्रजा पालन का भार भी उन्हीं के ऊपर आ गया। शत्रुंजय अब वृद्ध हो चुके थे, उनके स्वर्ग-गमन का समम अब निकट ही था। अतः उन्होंने भगवान के भजन मे अपने मन को लगा दिया। नये राजा से सारी प्रजा सन्तुष्ट थी और देव राज्यभार सम्हालते रहने पर भी ऋषि वचनों को स्मरण करते ही रहते थे और अपने अपने मन्त्रियों को बताते रहते थे। देव अपने पिता के समान ही राज्य का पालन करते थे। उनके राज्य में कोई प्रजा दुःखी नहीं थी। देव स्वयं अच्छे- धर्म ग्रन्थों, नीति ग्रन्थों आदि का अध्ययन करते थे। उनके शासन में अपराधी को समुचित दण्ड दिया जाता था। कक्ष स्थित विद्युत प्रकाशिका जिस भांति समग्र कक्ष को समान रूप से प्रकाशित करती है वैसे ही राजा देव अपनी सारी प्रजा का पालन समान रूप से करते थे। समय-2 पर प्रजा को बुलाकर उन्हें ज्ञानोपदेश भी देते थे। इस प्रकार समस्त बाहलीक का जीवन सुखमय व्यतीत हो रहा था। पूरी प्रजा देव को पिता मानती थी। अबाधगति, रथ के चले जाने से राजा शत्रुंजय को कुछ कष्ट था। कुछ काल उपरान्त यह पता

चला कि वे तीनो व्यक्ति उस राजा शत्रुमन्यु के ही थे। उन्हें यह रथ ही ले जाना था। और इसी से उन्होंने देव से मित्रता की थी और उन्हें उसी रथ पर चढ़ाकर राज्य से बाहर ले गये थे। सीधे मांगने पर उन्हें वह रथ दुर्लभ था इसी हेतु वे देव से गाढ़ी मित्रता करके उन्हीं के साथ रहने लगे थे। कुछ दिन बाद छद्मज्ञ ने देव से देश भ्रमण का प्रस्ताव रखा था और देव मित्र की बात न काट पाने के कारण उनके साथ चले गये थे। और सूर्यास्त देखने हेतु समुद्र तट पर पहुंच गये थे। इस प्रकार घूमते हुए उन्हें एक मास हो गया था पर देव अपने राज्य नहीं लौटे तो राज्य में अशान्ति फैल गई। ये सब बातें धीरे-2 राजकुमार ने ही अपने पिता से कही थीं। इस बात से राजा शत्रुंजय को बहुत कष्ट हुआ कि एक अतिप्रिय रथ उनके शत्रु के यहाँ है। वे एक सेना तैयार करके उस राजा के यहाँ जाकर उससे रथ छीनकर ले आये। रथ के आ जाने पर देव को बहुत प्रसन्नता हुई और अपनी सरलता पर उन्हें कुछ ग्लानि भी हुई। शत्रुंजय का शरीर शिथिल हो चुका था। एकदिन अपराह्न काल में उन्होंने देव को अपने पास बुलाया और बोले कि राजकुमार! सुनों में तुम्हें अन्तिम उपदेश दे रहा हूँ- प्रजा का पालन अपने पुत्र के समान करना, कभी-भी प्रजा की सम्पत्ति हड़पने का प्रयास मत करना। और किसी पर सहसा विश्वास मत करना। बस इतना ही कहकर शत्रुंजय ने हरिस्मरण करते हुए अपने शरीर को त्याग दिया। अपने पिता की मृत्यु पर देव को बहुत अधिक दुःख हुआ। वे अपने पिता की अन्त्येष्टि क्रिया करके ब्राम्हणों के कथनानुसार सभी कार्य किये। अब तो देव एक बन्धन में बँध गये। उन्हें अब सारी प्रजा की चिन्ता करनी पड़ती थी। इस प्रकार देव अब एक प्रौढ़ राजा के रूप में काम करने लगे।

(अध्याय आठ)

सारी प्रजा आज राजा के यहाँ आयी थी। आज राजा का सदुपदेश होना था। हरि-स्मरण करते हुए सभा का संचालन किया गया। राजा देव ने कहा- प्रिय प्रजा आज तुम्हें मैं अपने जीवन का ठोस अनुभव बताने जा रहा हूँ। उसे ध्यान देकर सुनो। मनुष्य ही नहीं समस्त जीवों का चरम लक्ष्य ईश्वर प्राप्ति ही है। मनुष्य को सभी से प्रेम करना चाहिए। सम्पूर्ण संसार को ईश्वर का शरीर समझो और सबसे प्रेम करो। यहि भगवान से सच्चा नेह करना चाहते हो तो सभी प्राणियों

से समान स्नेह करो। अब कुछ लौकिक नीति सुनो और उसे मनन करके उसके अनुसार चलो। मित्रता समान अवस्था वाले मनुष्य से नहीं करना चाहिए या तो वह बड़ा हो अथवा छोटा, समान अवस्था की मित्रता सम घृत-शहद-मिश्रण सदृश हानिकारक होती है। जिसको मित्र बनाओ उसका पूरा विश्वास करो। उसके प्रति छल कपट का कोई व्यवहार न करो अपने मित्र के दुर्गुणों को दूर करने का प्रयास करना चाहिए। उसको कुछ दिन परीक्षा लेकर तब किसी को मित्र बनाना चाहिए। इस प्रकार प्रजा राजा की वाणी को ध्यानपूर्वक सुन रही थी। राजा ने अपनी यात्रा का वर्णन किया। अपने कपट हृदय वाले मित्रों का वर्णन किया। इस प्रकार राजा देव ने प्रजा को मित्रता का एक उपयुक्त तरीका बताया। फिर हरि- स्मरण करते हुए सभा का विसर्जन कर दिय गया। सभी लोग राजा की मन ही मन प्रशंसा करते हुए अपने-2 घरों को चले गये इस प्रकार राजा के दिन बीत रहे थे। देव कभी-2 मृगया के बहाने उन महर्षि के पास चले जाते थे और उनसे ज्ञान प्राप्त करके अपने मन में मनन करते थे। तथा प्रजा को भी बतलाते थे। एक बार राजा प्रत्यूष वेला में मालती के शयन कक्ष में गये। वहाँ पर एक पलंग बिछा था जिसमें स्वच्छ गद्दे बिछे थे और गद्दों के ऊपर दूध के फेन सदृश स्वच्छ चद्दर बिछे थे वहाँ पर नववधू मालती एक सुमन युक्त कल्प लतिका सदृश लेटी हुई थी। सम्पूर्ण कक्ष परिमल युक्त तेल से सुवासित था। राजा मालती के शरीर के अव्यवस्थित शाटिका को सुव्यवस्थित करते हुए बोले- प्रिये! क्या सोती ही रहोगी? देखो तो सूर्य की किरणें गवाक्षों से छनकर भीतर आकर तुम्हारे सुन्दर मुख पर पड़ रही हैं। फिर भी तुम्हारे नयन कमल सुकुलित ही हैं। यह कैसा आश्चर्य! इस पर मालती ने अपने नेत्र को खोलकर उत्तर दिया- प्राणनाथ ये वे कमल नहीं है। जो रवि करों के स्पर्श से खिल उठे, ये तो आपके करों के स्पर्श से ही खिलते हैं। इस प्रकार उन दोनों ने विनोद की बाते करते हुए सुबह का एक घण्टा बिताया। फिर एकाएक मालती बोली- प्राणनाथ क्या आपको मुझे कष्ट देने में आनन्द आता है। राजा ने कहा नहीं तो प्रिये। आज तुम कैसी बात कर रही हो। तब मालती ने कहा- तो फिर हमें छोड़ करके आप क्यों चले गये थे। तब राजा ने कहा- यह सब कुसंगति का प्रभाव है। जिसप्रकार अग्नि को स्पर्श करने मात्र से हाथ जल जाता है उसी प्रकार कुसंगति में एक क्षण रहने मात्र से मनुष्य का हृदय परिवर्तित हो जाता है। परन्तु मैने बाहर

जाकर कुछ अच्छी बातें भी सीखी है। जिस प्रकार से गीले शहद को स्पर्श करने से हाथ में चिपक ही जाता है उसी प्रकार किसी सन्त की संगति में रहने पर उसके कुछ गुण आ ही जाते हैं। मैंने बाहर जाकर एक साधु की संगति की जिन्होंने मुझे कुछ ज्ञान का उपदेश दिया जो कि मनुष्य के लिए बहुत ही उपयोगी है। मालती ने कहा प्राणेश! उस उपदेश का सारांश हमें भी बता दीजिए। इस पर राजा ने कहा सुनो- उन सन्त महोदय ने हमें एक बहुत ही अच्छी बात बताई थी जिसे न मानकर हमें कष्ट उठाना पड़ा। तब से मैं जान गया कि बड़े लोगों की बातों की अवहेलना कभी नहीं करनी चाहिए। मालती ने कहा कि उन सन्त शिरोमणि ने आपसे क्या कहा था। तब राजा ने कहा- उन्होंने यही कहा था कि किसी से यदि मित्रता की जाये तो उस व्यक्ति को अच्छी प्रकार समझ करके ही करना चाहिए। बिना समझे किसी को अपना मित्र नहीं बनाना चाहिए। इसी पर उन्होंने एक पद्य भी कहा था जो कि मुझे उस समय खराब लग रहा था किन्तु वही आज हमें बहुत प्रिय लग रहा है वह यह है-

किसी मानव से तुम बहुत सहसा स्नेह न करो,
बिना जाने हीं तुम निज ह्रदय देना मत कभी।
सभीं होते हैं क्या सरल तुम जैसे जगत में,
किसी का है कैसा ह्रदय बतलाना कठिन है।।

इस प्रकार राजा अपनी प्रिया मालती से विनोद और हास परिहास करके नित्यकर्म हेतु उस कक्ष से बाहर निकले। प्रातःकाल स्पष्ट हो चुका था। पक्षियों का समूह कलरव कर रहा था। सुवासित वायु मन्दगति से चलने लगी थी। राजा स्नानादि करके राज्य दरबार में उपस्थित हुए। राज्य का संचालन प्रारम्भ हुआ। प्रजा अब पूर्ण सन्तुष्ट थी। क्योंकि उन्हें राजा के द्वारा अच्छी बातें भी सुनने को मिल जाती थीं। राज कुमार देव के राजा होने पर प्रजा के सभी कष्ट दूर हो गये थे। सभी लोग प्रसन्न रहते थे। राजा सायंकाल हरि-स्मरण के लिए समय देता था। और इस प्रकार वे अपने जीवन लीला को धीरे-2 समाप्त कर रहे थे। राजा को उन ऋषि के संयोग से अब पर्याप्त ज्ञान हो चुका था।

।। सम्पन्न ।।